पुरुषसूक्तम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-पुरुषोत्तमभाष्य
एवं हिन्दीटीका सहित

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादक
अरुण कुमार पाण्डेय

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

NOTION PRESS

India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews.

The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references ["Content"]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

All Rights Reserved - Author

श्रीभागवतानंद गुरु

पुरुषसूक्तम्

श्रीनिग्रहाचार्यकृत-पुरुषोत्तमभाष्य
एवं हिन्दीटीका सहित

लेखक
श्रीभागवतानंद गुरु

सम्पादक
अरुण कुमार पाण्डेय

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित
NOTION PRESS

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे |
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम् ||

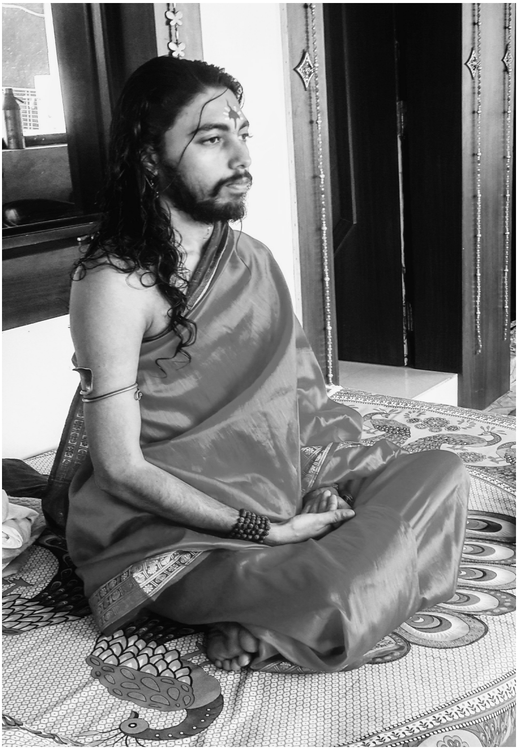

श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

भूमिका

पुरुषसूक्त का वर्णन प्रधानता से ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुस्तक में शुक्लयजुर्वेदीय पुरुषसूक्त का निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु कृत पुरुषोत्तमभाष्य सम्मिलित किया गया है। पुरुषसूक्त एवं श्रीसूक्त दोनों ही इस विश्व के वैदिक ज्ञान के अमूल्य रत्न हैं। पूर्वकाल में देवी पद्मिनी की साधना के फलस्वरूप निग्रहाचार्य जी ने श्रीसूक्त पर शङ्करभाष्य का प्रणयन किया था तथा सम्प्रति उन्होंने पुरुषोत्तम भाष्य का लेखन किया है। इस भाष्य की विशेषता यह है कि इसमें प्रचलित अर्थ के वर्णन के साथ ही वर्णोद्धार के तन्त्राभिधानार्थ का भी समावेश किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस वर्ण के उद्धार क्रम में शब्दब्रह्मोपदेशक मातृकाशास्त्रों के अनुसार जिस प्रकार का वाचकार्थ बताया गया है, उसी प्रकार की व्याख्या इसमें भी की गयी है। जिस प्रकार से प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है वैसे ही प्रत्येक वर्ण का भी अर्थ होता है। जिस प्रकार एक मानचित्र का आश्रय लेकर पथिक अपने गन्तव्य को प्राप्त कर लेता है, वैसे ही वर्णाभिधान को जानने वाला व्यक्ति भी मन्त्र के सूक्ष्म एवं अप्रचलित भावों को जान जाता है। इस पुस्तक के अन्तर्गत स्कन्दपुराण में वर्णित पौराणिक पुरुषसूक्त भी मन्त्रक्रम के साथ दे दिया गया है जिससे इसकी उपयोगिता में वृद्धि हुई है। पौराणिक एवं वैदिक पुरुषसूक्त के अर्थक्रम में कुछ भेद प्राप्त होता है अतएव यहां अर्थपरक क्रम न रखते हुए श्लोकपरक यथोक्त क्रम का ही प्रयोग किया गया है। यद्यपि मानवीय भूल वश कतिपय स्थानों पर टंकण दोष हो सकता है, तथापि विज्ञ पाठकगण स्वविवेक से उसका मार्जन करेंगे ऐसी कामना और विश्वास है। सधन्यवाद ...

आचार्य अरुण कुमार पाण्डेय

॥अथ पुरुषाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः।

मन्त्रः

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

(पौराणिकः)

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं सर्वतो व्याप्य अध्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - सर्वलोकव्यापी महानारायणः सर्वात्मकत्वेनानन्तशिरोभिश्चानन्तचक्षुभिरनन्तचरणैः समन्वितो जीवनीयसामर्थ्यसंयुक्तं भूमिसंज्ञकं ब्रह्माण्डगोलकं सर्वत आप्लुत्य प्राणिनामन्तरे नाभ्या दशाङ्गुलप्रादेशमात्रमतिक्रम्य हृद्देशेऽधितिष्ठति। अत्र सहस्रशब्देनानन्तवचनम्। सर्वेषां प्राणिनां कलेवर आपादमस्तकस्थूलाङ्गवृत्त्या नेत्रादिज्ञानेन्द्रियवृत्त्या वा सोऽव्यक्त एव व्यक्तीकृतः। एवं सर्वभूतात्मसाक्षी सर्वकर्मकर्ता सर्वज्ञानयुक्तो भवति।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - यशसा समन्वितो विष्णुः कुलहीनो जगत्प्राणो ब्रह्मशब्देन महामतिं विशुद्धं जीवं पावकसन्निभं मरुद्भक्षकमनन्तविस्तरमानङ्के। स गुह्यकर्ता कल्याणवाचनं नादयन् सर्वश्रेष्ठो बभूव। सोऽक्षरधर्मा गगनं सोऽहमित्यूर्ध्ववाचकैर्विद्युज्जन्यशब्दैरपूरयत्। त्रिगुणानामीशः प्रहसन्निवोपभुञ्जानः सृष्टिस्थितिसंहारादित्रिशक्तियुतो बभूव। जगद्बीजः प्राणात्मानं प्रक्षिपन् स्वशक्त्यादर्शनो ध्यानबोधितोऽमृतत्वेनानञ्ज। प्रीतियुक्तो रक्षणार्थमेकोऽपि सन् विस्तृतो बभूव। सर्वतो दिग्भ्यः शीघ्रगमनशक्तिशाली तारकः सूक्ष्मः शिव एकपादो धाता सुखेन नादपूर्णो निनदन् लीयते।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - सभी लोकों में व्याप्त महानारायण सर्वात्मक भाव से अनन्त मस्तक और अनन्त नेत्र तथा अनन्त चरण से युक्त होकर जीवनीय सामर्थ्य से युक्त भूमि नाम वाले इस गोल ब्रह्माण्ड को सभी ओर से आवृत्त करके प्राणियों के भीतर नाभि से दस अंगुल क्षेत्र का अतिक्रमण करके हृदयस्थान में स्थित रहते हैं। यहाँ सहस्र शब्द से अनन्त का वाचन है। सभी प्राणियों के शरीर में पैर से मस्तकपर्यन्त स्थूल अंग अथवा नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियरूप से वह अव्यक्त ही व्यक्त होता है। इस प्रकार से सभी प्राणियों का साक्षी, सभी कर्म करने वाला एवं सभी प्रकार के ज्ञान से युक्त होता है।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - यश से युक्त विष्णु, जो कि कुल से हीन (अजन्मा) और संसार के प्राण हैं, उन्होंने ब्रह्मशब्द (प्रणव) से महान् मति वाले, जो अग्नि के समान देदीप्यमान है, प्राणवायु का भक्षण करने वाला एवं अनन्त विस्तार वाला है, ऐसे विशुद्ध जीव को निकाला।

गुप्तकर्म करने वाला वह (जीव) कल्याणमय शब्दों का वाचन करता हुआ सबसे श्रेष्ठ हुआ। कभी नष्ट न होने के गुण से युक्त उस जीव ने आकाश को 'वह मैं ही हूँ' ऐसा बिजली की गडगडाहट के समान शब्द से व्याप्त कर दिया। गुणों का स्वामी वह हंसता हुआ सा, तीनों गुणों का उपभोग करता हुआ, सृष्टि-स्थिति-संहार की शक्ति से युक्त हुआ। संसार का बीज, प्राणसंज्ञक आत्मा को बलपूर्वक फैलाता हुआ, अपनी शक्ति से स्वयं को गुप्त रखने वाला, केवल ध्यान के द्वारा ज्ञात होकर अविनाशी पद से शोभित हुआ। प्रीति से युक्त होकर सबों की रक्षा

करने के लिए, एक होता हुआ भी वह विस्तृत हुआ। सभी दिशाओं से शीघ्र गमन करने की शक्ति से युक्त, उद्धार एवं कल्याण करने वाला वह सूक्ष्म चेतन एक पाद (चतुर्थांश) वाला, सबों को धारण करने वाला होकर सुख से प्रणवनाद करता हुआ लीन रहता है।

॥इति पुरुषाधिकारः ॥

*_*_*

॥अथामृताधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्षीजगती छन्दः
पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

(पौराणिकः)

यः पुमान्परमं ब्रह्म परमात्मेति गीयते ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं पुरुष एव तत् ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यदस्ति यदासीद्यद्भविष्यति संसारबीजत्वेनान्नपरिणामतया वीर्यजन्यानां नृचतुष्पदगुल्मादिजीवानां प्राकट्यमेवं सर्वममृतस्याधिष्ठातुर्नारायणस्य विस्तारोऽस्तीति परिगीयते। एवं सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धानुसारेण कर्मफलभोगाय निमित्तभूतेन स्वीयां कारणावस्थामुल्लङ्घ्य दृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - यस्मिन् सर्वे लयं प्राप्नुवन्त्येवमवशिष्टः स शेषसंज्ञकश्चेतनः शब्दायते। तच्छब्देन सर्गविसर्गौ भवत एवं स विज्ञः। नियोगेनावधारणया परमैश्वर्यसंयुत आत्मन्येव परिपूर्णो योगशक्त्या जन्तून्नयति, भ्रान्त्याथवा हली इव भाति यदा यमसादनं नयति। जनानां पापहा भूत्वा वैकुण्ठं यच्छति। वितर्कप्रश्नान्धकारं भास्करज्योतिरिवार्वति। सर्वेषां हेतुरूपोऽतत्यादिनेत्ररूपः सूक्ष्माभावं कृत्वा प्रकृतेर्गर्भकोटरस्याङ्कुरं पुण्येनानुकम्पयति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - जो कुछ भी है, जो कुछ था एवं जो कुछ होगा, संसार के बीजरूप अन्न के परिणामभूत वीर्य (या बल) से जन्य मनुष्य, पशु अथवा वृक्ष आदि जीवों का प्राकट्य आदि सब कुछ, अमृत (मोक्ष) के अधिष्ठाता नारायण का ही विस्तार बताया जाता है। इस प्रकार से सभी प्राणियों के प्रारब्ध के अनुसार कर्मफल को भोगने

के लिए वह निमित्तरूप से अपनी कारणावस्था का उल्लंघन करके इस दृश्य जगत् की अवस्था को प्राप्त करता है।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - जिसमें सभी विलय को प्राप्त हो जाते हैं एवं जो अन्त में बच जाता है, वह 'शेष' नाम वाला चेतन (प्रणव) शब्द का उच्चारण करता है। उस शब्द से ही सृष्टि एवं प्रलय होते हैं और इस प्रकार से वह सब कुछ जानने वाला बनता है। विशेष प्रकार से निश्चय करके संयुक्त करने की अवधारणा के द्वारा परम ऐश्वर्य से युक्त होकर, अपने आप ही परिपूर्ण, योगशक्ति से प्राणियों को गन्तव्य की ओर ले जाता है।

अथवा जब यमलोक ले जाता है तो भ्रम के कारण जैसे हल को धारण करने वाला व्यक्ति खींचता है, वैसा ही प्रतीत होता है। लोगों के पापों का नाश करके वैकुण्ठ भी ले जाता है। कुतर्क एवं प्रश्न के अन्धकार को सूर्य के प्रकाश के समान नष्ट कर देता है। सबों का हेतु बनकर उन्हें व्याप्त करता है। सबों का आदिनेत्र बनकर सूक्ष्मता का नाश करके प्रकृति की गर्भगुहा के अंकुर (जीव) को पुण्य/सौभाग्य देकर उस पर कृपा करता है।

॥इत्यमृताधिकारः॥

*_*_*

॥अथ विश्वाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः
पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः।

मन्त्रः

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

(पौराणिकः)

एतावानस्य महिमा ज्यायानेष पुमान्प्रभुः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - तस्य विभूतयोऽसङ्ख्यातास्त्रिषु कालेषु व्याप्ताः सन्ति। विश्वमखिलं तस्य महिम्नश्चतुर्थांशमेव। त्रिषु कालेषु विभाजितञ्जगत्तस्य स्वकीयसामर्थ्यमहिमा एव न तु पूर्णरूपम्। त्रिभागमाश्रित्यामृतमश्नाति। परमात्मनोऽवशिष्टपादत्रयममृतत्वेऽविनाशिनि पदे अस्ति। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - पुरुषो जीवस्याह्वानपूर्वकं शुद्धिं कृत्वा रुतं द्रावयति। सुखेनात्मानं जीवं वापयति। स्नेहपूर्वकं बृंहयति। कालोऽपि सन् भद्रमस्त्युत्प्रेरयति। श्रुत्या धर्मं मिमीते। ध्वजवदुद्देश्यदर्शको भवति। प्राचीनानां प्राचीनस्स युगान्तबोधकोऽस्ति। कान्तिहेतुस्स पापशोधनं करोति। नामोच्चारणमात्रेण गर्भविमोचनं करोति। सर्वदा रक्षणं करोति विद्विषामवद्यति। ब्राह्मयोगावलम्बनेनानागतकालस्य प्रतिष्ठा भवति। ज्ञानस्य विस्तारं कृत्वा गुरुतो ग्रहणं कारयति। दैहिकदैविकभौतिकसंज्ञकान्त्रितापत्रिपाज्ज्वरमुपशाम्यत्यूर्ध्व - गमननिर्वाणं कारयति यथा याति याचितं स्वर्गममृतस्थानन्तथैव जनेभ्यः प्रयच्छति। दीनजनाननुस्मरन् विज्ञानेन पालयति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - उसकी विभूतियाँ असंख्य हैं और तीनों कालों में व्याप्त हैं। सम्पूर्ण संसार उनकी महिमा का चतुर्थांश मात्र है। तीनों कालों में विभाजित यह संसार उसके अपने सामर्थ्य की महिमा

है, उसका पूर्ण रूप नहीं। तीन भागों का आश्रय लेकर वह अमृतत्व का उपभोग करता है। परमात्मा के शेष तीन चरण अविनाशी अमृतपद में स्थित हैं।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - वह पुरुष जीव का आह्वान करके उसे शुद्ध करता है एवं उसके कष्टों का नाश करता है। सुख से स्वयं को एवं उस जीव को आनन्दित करता है। स्नेहपूर्वक विस्तार करता है। नाश करने वाला होने पर भी सुन्दर है और सबों को प्रेरित करता है। वेदमन्त्रों के द्वारा धर्म का वाचन करता है। जिस प्रकार ध्वज लक्ष्य का संकेत कराता है वैसे ही ध्वज के समान उद्देश्य का दर्शन कराने वाला होता है। पुराने लोगों से भी अधिक पुराना, वह युग के अन्त का बोध कराने वाला होता है। कान्ति का कारण वह, पाप का शोधन करता है। नाम के उच्चारणमात्र से गर्भवास (पुनर्जन्म) से मुक्त कर देता है। वह सदैव रक्षा करता है एवं द्वेष करने वालों का छेदन कर देता है। ब्राह्मयोग का आश्रय लेकर भविष्यकाल का आधार एवं आश्रय बनता है। ज्ञान का विस्तार करके गुरुमुख से उसे ग्रहण करवाता है। दैहिक, दैविक एवं भौतिकसंज्ञा वाले तीनों तापरूपी तीन पैरों वाले ज्वर को शान्त करके ऊपर के लोक में भेजता है अर्थात् मोक्ष कराता है। वह जैसे स्वयं याचित अमृतस्थान स्वर्ग में जाता है, वैसे ही अन्य लोगों को भी वही लोक देता है। दीन जनों का स्मरण करके विज्ञान के द्वारा उनका पालन करता है।

॥इति विश्वाधिकारः ॥

* * *

॥अथ त्रिपादधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥

(पौराणिकः)
छन्दांसि जज्ञिरे त्वत्तस्त्वत्तो यज्ञपुमानपि ।
त्वत्तोऽश्वाश्च व्यजायन्त गावो मेषादयस्तथा ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - त्रिभिश्चरणैः स पुरुषो ब्रह्माण्डातीते लोके स्वात्मन्यानन्दविग्रहे तिष्ठत्यन्येन चतुर्थांशेन जगद्व्याप्नोति। तस्मिन्नेव पादे योगमायां सन्निवेश्य प्रकृतिमश्नन् देवतिर्यङ्नरादिरूपेषु चराचरत्वेनाधितिष्ठति। संसारवासनास्पर्शरहितो ब्रह्मवृत्त्याज्ञानजन्यत्रिगुणात्मकप्रपञ्चमयमिदञ्जगद्देवपशुमानवादि - रूपेण विविधो भूत्वाश्नात्येवं स्वयमेव भोज्यभोजकतया व्याप्नोति। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - तरति भवसागरमनेनेति तरणं मत्वा मुमुक्षू रियति। पान्थमस्तीति मत्वा रसरूपिणमेनं पिबति। सांसारिकं मुग्धमवलोक्य दूयते। कामवह्निदाहितान् चिन्ताग्रस्तानप्यभीष्टदानेन मण्डयति। बन्धनान्मोचयति। जगद्योनिहेतुत्वाद्ब्रह्मा। पुरुसंज्ञके कलेवरे शयनात्पुरुषः। स्वकिरणैर्जगद्बीजं वायुरिव पद्मनाभाज्जहाति। यज्ञसूत्रवदवधारणेन विस्तारमाप्नोति। पक्षी इव कलकण्ठेन ङ्वते। सिद्धैस्सेवितो योगेन पूतनाशान्तिदानं शिवञ्च करोति। लक्ष्मीसुखमाशास्ते नृभ्यः। उपमया सादृश्येन वा शिवगर्जनमामन्त्रयतीत्यस्यार्थः।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - वह पुरुष तीन चरणों से ब्रह्माण्ड के भी ऊपर के लोक में अपने ही आनन्दविग्रह में स्थित रहता है एवं अन्य चौथे अंश से संसार को व्याप्त करता है। उसी चौथे चरण में योगमाया

का निवेश करके प्रकृति का उपभोग करता हुआ देवता, पशु, मनुष्य आदि रूपों में चराचर की भावना से उनका अधिष्ठाता बनता है। संसार की वासना के स्पर्श से रहित होकर ब्रह्मवृत्ति से अज्ञानजन्य त्रिगुणात्मक प्रपञ्चमय इस संसार को देवता, पशु, मनुष्य आदि रूपों में विभिन्न प्रकार का होकर उपभोग करता है एवं इस प्रकार से स्वयं ही भोज्य और भोजक बनकर उसे व्याप्त करता है।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - इससे भवसागर तरता है, यह सोचकर इसे नौकारूप मानकर मोक्ष की इच्छा करने वाला व्यक्ति इसमें जाता है। यह मार्ग का पाथेय है, ऐसा मानकर इस रसरूपी को पीता है। संसार में मोहित जनों को देखकर खिन्न होता है। कामनाओं की अग्नि से जलाये गये और चिन्ता से ग्रस्त लोगों को भी उनकी अभीष्ट वस्तु प्रदान करके प्रसन्न करता है। बन्धन से मुक्त करता है। संसारचक्र का उत्पत्तिस्थान होने से वह ब्रह्मा है। 'पुरु' नाम वाले शरीर में सोने से पुरुष है। अपनी किरणों से संसारबीज को वायु के समान विष्णु (के नाभिकमल) से छोड़ता है। यज्ञसूत्र (यज्ञोपवीत) के समान (अविच्छिन्न) अवधारणा के द्वारा विस्तार को प्राप्त होता है। पक्षी के समान मधुर कण्ठ से ध्वनि करता है। सिद्धों के द्वारा सेवित होकर योगबल के माध्यम से पूतना आदि बालग्रहों की शान्ति और कल्याण करता है। लोगों को धन एवं सुख का आशीर्वाद देता है। उपमा एवं सादृश्यता की भावना से (सभी प्राणियों के लिए समान भाव से) कल्याणकारी गर्जना को आमन्त्रित करता है, ऐसा अर्थ है।

॥इति त्रिपादधिकारः॥

* * *

॥अथ विराडधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

ततो विराडजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५॥

(पौराणिकः)

ब्राह्मणा मुखतो जाता बाहुजाः क्षत्रियास्तव ।
विशस्तवोरुजाः पद्भ्यां तथा शूद्राः समागताः ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - सर्गादौ परमपुरुषाद्धिरण्यगर्भो विराट् तद्रूपी ब्रह्माण्डकलेवरो बभूव। सर्वेषां श्रेष्ठः स जायमानो भूमिं निवासहेतुभूतां निवासिनीः पुरसंज्ञिका देवमनुष्यादियोनीश्च निर्ममे। सर्ववेदान्तवेद्यः परमात्मा स एव स्वमायया विराट्कलेवरं ब्रह्माण्डरूपं सृष्ट्वा तत्र जीवभावनया प्रविश्य ब्रह्माण्डाभिमानी देवताभवज्जातस्सनतिरिक्तश्च तस्थौ।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - सुगत्या कामिनी दीर्घजङ्घानिग्रहं कुर्वती विभ्रमन्ती पृथिव्यां मदविह्वला विजयानङ्गवेदिनी मदनातुरा विशेषेण राजतेऽधिकारेण शोधनं करोति। रुष्यति सम्मोहाज्जीवोपरि। यदा व्यक्ता भवत्यतति शीघ्रं गच्छति रियति। चणति प्राणसंज्ञया श्याममुखी। वेगेन लोकान्पातयति मृत्युदायिनी भवति। चौरवत् स्मृतिं हरति। दीनं विद्यमानं दृष्ट्वा मेद्यति क्लेशिताय भोगदा भूत्वानुकम्पयति। एवं मूला मोहिनी त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्मणो माया भवति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - सृष्टि के प्रारम्भ में परमपुरुष से हिरण्यगर्भ विराट् और उसके स्वरूप वाला ब्रह्माण्डरूपी देह उत्पन्न हुआ। सबों से श्रेष्ठ वह विराट् उत्पन्न होता हुआ निवास के लिये भूमि एवं उसमें निवास करने वाली 'पुर'संज्ञक देवमनुष्यादि योनियों का निर्माण किया। सभी प्रकार के वेदान्त के द्वारा ज्ञात होने वाला वह परमात्मा

ही अपनी माया के माध्यम से विराट् शरीर को ब्रह्माण्डरूप से बनाकर वहाँ जीवभाव से प्रविष्ट हो ब्रह्माण्ड का अभिमानी देवता हुआ और ऐसा करते समय भी अतिरिक्त रूप से अपने मूल ब्रह्मरूप में भी अवस्थित रहा।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - अपनी सुन्दर गति से वह कामिनी विशाल जंघाओं को नियंत्रण में रखते हुए पृथ्वी में घूमती हुई, मद से विह्वल हो, सबों पर विजय प्राप्त करती हुई, कामनाओं का प्रबोधन करती हुई विशिष्ट प्रकार से सुशोभित होती है। अधिकार-पूर्वक जीव का शोधन करती है, सम्मोहन के द्वारा उसपर क्रोध भी करती है। जब वह व्यक्त होती है तो शीघ्रता से गमन करती है, सर्वत्र व्याप्त होती है और भ्रमण करती है।

प्राणसंज्ञा के द्वारा श्यामवर्ण के सुन्दर मुखमण्डल वाली वह, शब्द करती है। वेगपूर्वक लोकों को गिराती है, उनके लिए मृत्यु देने वाली होती है। जैसे कोई चोर अपहरण करता है, वैसे ही लोगों की स्मृति का हरण करती है। अपने सामने किसी दीन को देखकर उसे प्रसन्न कर देती है, कष्ट में पड़े व्यक्ति के लिए भोग प्रदान करने वाली बनकर उसपर अनुकम्पा करती है। इस प्रकार से सभी की मूल, सबों को मोहित करने वाली वह त्रिपुरसुन्दरी ब्रह्म की माया होती है।

॥इति विराडधिकारः॥

*_*_*

॥अथ ग्राम्याधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्चीपङ्क्तिश्छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥

(पौराणिकः)
मनसश्चन्द्रमा जातश्चक्षुषस्ते दिवाकरः ।
कर्णाभ्यां श्वसनः प्राणैर्जिह्वाया हव्यवाडपि ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यस्मिन् सर्वात्मा पुरुष इज्यत एतादृशं यज्ञं माध्यमिकं कृत्वा विविधान्यम्बुहविष्यान्नानि विरच्य प्राणवायुसंश्रितानष्टपाशग्रस्तान्जीवान्मृगादीन्वन्यानश्वादीन्ग्राम्यान् ससर्ज। पुरुषो यस्मिन् यज्ञे हूयते पौरुषाहुतयो वा कल्पिता भवन्ति स सर्वहुतस्तस्मात्पुरुषमेधाख्ययज्ञरूपात्तस्य चतुर्थांशेन दधिमिश्रमाज्यं समुत्पन्नं सर्वं सम्पादितञ्च।
वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - गन्धो यथा मनोहरो वारंवारं स्मर्यते तथैव जितेन्द्रियैर्योगो वारंवारं नियुज्यते। यथा हिनस्ति क्षितिमूर्तिर्वा जुहोति लोकममृताग्नौ, तथैव सम्यक्प्रकारेण धृतो जीवो मायया भवसागरे दीयते पिशाचवद्याति। घृणालज्जाजुगुप्साद्यष्टपाशैराबद्धो जीवः पशुभावापन्नो मकरग्रस्तगज इव खिद्यते। कूर्मो यथा जले रियति तथा ब्रह्मसम्बोधितो जीवो भवार्णवं तरति। वितर्कवादिनो विकृतिं बाणतुल्यशितां यान्ति। पुरुषः कामवह्निना रतिं होमेच्छामात्रेणाभिलषितं राति। जगन्निर्माणकाले प्राणसंज्ञको हंसश्चेतनो हंसिन्या सह ज्ञायते।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - जिसमें सर्वात्मा पुरुष का यजन किया जाता है, ऐसे यज्ञ को माध्यम बनाकर विविध प्रकार के जल एवं हविष्यान्न की रचना करके प्राणवायु पर आश्रित रहने वाले अष्टपाश से ग्रस्त पशुसंज्ञक जीवों को, वन में रहने वाले हिरण आदि तथा गाँव में रहने

वाले घोड़े आदि की रचना की। जिस यज्ञ में पुरुष की हवन के माध्यम से आराधना होती है अथवा पौरुषीय आहुतियों की कल्पना की जाती है, वह सर्वहुत है, उसमें 'पुरुषमेध' नाम वाले यज्ञरूपी के चौथे अंश से दधिमिश्रित घृत समुद्भूत हुआ, जिसके माध्यम से सब कुछ सम्पादित किया गया।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - जिस प्रकार मन को हरण करने वाला गन्ध बारम्बार स्मरण किया जाता है, वैसे ही जितेन्द्रियों के द्वारा योग भी बारम्बार योजित होता है। जैसे शिव संसार का संहार करते हैं अथवा उन्हें अमृताग्नि में होम कर देते हैं वैसे ही भली प्रकार से माया के द्वारा पकड़ा गया जीव भी भवसागर में दिया जाता है जहाँ वह पिशाच के समान भ्रमण करता है। घृणा, लज्जा, जुगुप्सा आदि आठ पाशों से बन्धा हुआ जीव पशुभाव को प्राप्त करके ग्राह के द्वारा ग्रस्त हाथी के समान दुःखी होता है।

जैसे कछुआ जल में सुखपूर्वक भ्रमण करता है वैसे ही ब्रह्म के द्वारा सम्बोधित होने पर जीव भी भवसागर को पार कर जाता है। जो वितर्कवादी हैं, वे बाण के समान तीखी विकृति की गति को जाते हैं। पुरुष कामरूपी अग्नि के माध्यम से रति को होम की इच्छामात्र से अभीष्टरूप में प्राप्त कर लेता है। संसार के निर्माणकाल में प्राणसंज्ञा वाला यह हंस चेतन, हंसिनी (माया) के साथ ज्ञात होता है।

॥इति ग्राम्याधिकारः॥

* * *

॥अथ छन्दोऽधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥

(पौराणिकः)

नाभितो गगनं द्यौश्च मूर्द्धस्ते समवर्त्तत।
पादाभ्यां ते धरा जाता दिशश्चाष्टौ श्रुतेर्गताः ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - हविष्यभोजिनो यज्ञपुरुषाद्वेदा बभूवूः। ऋचः सामानि छन्दांसि यजूंष्यपि तस्मादजायन्त। सर्वैर्हूयमानाद्यज्ञपुरुषादृग्वेदः सामवेदो यजुर्वेदोऽपि गायत्रीप्रभृतानि छन्दांसि च तस्मादेव उद्बभूवुः। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - भवतारणदक्षं जगद्बीजं विष्णुं लक्ष्मीर्धाता पुरुषोत्तम इति जानाति, कामिनी भूत्वा सम्पूर्णतयाधिकरणं तर्दति। देवानां माता सङ्कोचयति मूर्तिमनन्तस्य। वारणेनान्तर्भावो मानवाक्षाद्बुधाद्वा विदूरीक्रियते। पशुपतिना शिवेनोपतापः शम्यते तदा विष्णुमेति। पुनर्मृत्युञ्जयो भवति पाण्डित्यमेति सम्बोधनेन भवसागरं तरति। ब्रह्ममानी भवत्यचलपदं याति। जवतेऽक्षरां ब्रह्मप्रतिष्ठाम्। ज्ञानेन जेता मानद आग्नेयजटी भवति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - हविष्य का उपभोग करने वाले उस यज्ञपुरुष से वेद उत्पन्न हुए। ऋग्वेद, सामवेद, नानाविध छन्द एवं यजुर्वेदादि भी उससे ही उत्पन्न हुए। सर्वहुत यज्ञपुरुष से ऋग्वेद, सामवेद, गायत्री आदि और यजुर्वेद भी हुए।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - संसार से तारने में ये दक्ष हैं, संसार के आदिकारण हैं, ऐसा विष्णु को मानकर लक्ष्मी उन्हें सबका पालन करने वाला एवं पुरुषों में उत्तम समझती हैं और उनकी

कामना करते हुए उनके सम्पूर्ण अधिकारों का हरण करती हैं (उनके लोकपालनादि कर्तव्यों का पालन स्वयं करती हैं।) देवताओं की माता (लक्ष्मी) उन अनन्त विष्णु के सगुणरूप को संकुचित करती है और वारणपूर्वक उनके आन्तरिक स्वरूप को मानवीय दृष्टि एवं बुद्धिमानों की पकड़ से दूर हटाती है। पशुभाव से ग्रस्त जीव के स्वामी शिव जब क्लेश का शमन कर देते हैं तब जीव विष्णु को प्राप्त करता है।

उसके बाद वह मृत्यु को जीत लेता है, पाण्डित्य से युक्त होता है, ब्रह्म को भली प्रकार से जान लेने के कारण भवसागर को पार कर जाता है। ब्रह्म के मान से युक्त हो वह अचलपद को प्राप्त करता है। ब्रह्म की कभी नष्ट न होने वाली प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। ज्ञान से सबों पर विजय प्राप्त करता है, सबों को सम्मान देता है और अग्नि के समान देदीप्यमान जटा (शीर्षावरण) वाला होता है।

॥इति छन्दोऽधिकारः ॥

*_*_*

॥अथाश्वाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥

(पौराणिकः)

सप्तासन्परिधयस्त्वत्त एकविंशत्समिच्च वै ।
चराचराः सर्वभावास्त्वत्त एव हि जज्ञिरे ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यज्ञपुरुषादेवाश्वा अजायन्त येषामूर्ध्वमधो दन्ता भवन्ति। गावोऽजाश्चापि तस्माज्जाताः। हयातिरिक्ताः खरादय ऊर्ध्वमधोभागयोर्दन्तयुक्तास्तेऽप्यजायन्तावयो मेषादयश्चापि।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - हरेर्दक्षपादं लक्ष्मीः सद्यः शयनहेतवे वापयति। न जायते नोत्पद्यते किन्तु सङ्कर्षणरूपेण विश्वं पुनाति। यथा वायुः प्रमर्दयति तथैव कामदेवं प्रमर्दयति। चेतनः सद्योजातः साधुसम्भवः क्रियया दैन्यं तर्दति। गीयते विशेषेण स्मर्यते। जीवो वेगितः पाण्डित्यस्मृत्या ब्रह्मशब्दस्य शक्तिममृतं हंसशब्दं वारं वारं प्रतिध्वनितं जयति विजयते। पुण्येन पितामह आद्याशक्त्या यौवनमुपभुङ्क्ते।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - यज्ञपुरुष से ही घोड़े उत्पन्न हुए, जिनके ऊपर एवं नीचे दोनों ओर दांत होते हैं। गाय-बकरियां भी उससे ही उत्पन्न हुईं। घोड़ों के अतिरिक्त गधे आदि, जिनके ऊपर और नीचे, दोनों भागों में दांत होते हैं, वे भी उत्पन्न हुए, साथ ही भेड आदि भी उत्पन्न हुए।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - लक्ष्मी हरि के दाहिने पैर की उनके शीघ्र शयन के निमित्त सेवा करती है। वह जन्म नहीं लेता, उत्पन्न नहीं होता किन्तु सबों को आकृष्ट करने वाले संकर्षण रूप

के माध्यम से विश्व को पवित्र कर देता है। जिस प्रकार से वायु सबों को मर्दित करता है वैसे ही वह भी कामदेव का मर्दन कर देता है। तुरन्त प्रकटीकृत चेतन, जो कि सत्पुरुष (ब्रह्म) से सम्भूत है, अपनी क्रियाशीलता के कारण दीनता का संहार कर देता है।

उसका गान होता है, विशेषकर चेतनतत्त्व का स्मरण किया जाता है। वेगपूर्वक जीव कर्तव्य एवं अकर्तव्य का विवेक धारण करने वाली स्मृति के द्वारा ब्रह्मशब्द (प्रणव) की शक्ति अमृतत्व (मोक्ष) को, हंसशब्द (ब्रह्मबोध) को, जो बार बार प्रतिध्वनित होता है, उसे जीत लेता है, विशेष प्रकार से जीतता है (अविनाशी पद पर आरूढ़ हो जाता है)। इस पुण्यबल से ही पितामह ब्रह्मा आदिशक्ति के माध्यम से यौवन का उपभोग करते हैं।

॥इत्यश्वाधिकारः ॥

*_*_*

॥अथ यज्ञाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः
पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥

(पौराणिकः)

त्वमेव जगतां नाथस्त्वमेव परिपालकः ।
उग्ररूपश्च संहर्ता त्वमेव परमेश्वर ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - सृष्टेः साधनभूता देवा मन्त्रद्रष्टार ऋषयश्च तं पुरुषं यागेन सेचितवन्तस्तेनैव यज्ञं सम्पादितवन्तः। पूर्वजातं पुरुषत्वेनोत्पन्नं यज्ञसाधनभूतं यज्ञपुरुषं पशुभावनया यूपे बद्धा सिद्धियुक्ताः प्रजापतयो देवर्षयश्चापि प्रोक्षितवन्तो मानसयज्ञं कृतवन्तः। अत्र कारणे कार्योपचाराद्यज्ञेन यज्ञसाधनमभिधीयते। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - संसारोद्धारको महेश्वर इज्यन्ते देवता यत्र तं यज्ञं सञ्जहार। प्रकृतेर्वर्द्धनकाले शिवः शान्तस्तिष्ठत्युत्पत्तौ प्रकृतिर्व्यापिनीषद्धास्यमुखी ज्वालिनी भवति। पुर्षु देहसंज्ञकेषु शेते यस्स पुरुषो व्यक्तरूपस्सर्वमतति व्याप्नोति। स विश्वात्मा प्रकृत्या सह जयति। गौरवर्णोज्ज्वला प्रकृतिर्गौरीति कथ्यते यस्या उपमा नास्ति। सा दीनान्नित्यं दयते विकल्पादयते सर्वत्रगा जनयति लोकाञ्जनान् तारयति। सा गौरी ध्यानेन चिन्तनेन वाधिगृह्यते। शिवेन दौत्यं कारयति श्रेष्ठयोगबलेन शुभशब्दमाकारयति मोहिनी भवति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - सृष्टि के साधनभूत देवताओं ने तथा मन्त्रों का दर्शन करने वाले ऋषियों ने उस (विराट्) पुरुष का यज्ञ के माध्यम से सेचन किया और उसके माध्यम से ही यज्ञ को सम्पादित किया। पूर्व में पुरुषरूप से उत्पन्न यज्ञ के साधनभूत उस यज्ञपुरुष को पशुभावना से यूप में बांधकर सिद्धि से युक्त प्रजापति, देवता एवं

ऋषियों ने प्रोक्षण किया एवं मन के द्वारा यज्ञ किया। यहाँ पर कारण में ही कार्यरूपी उपचार से भिन्न यज्ञ के द्वारा यज्ञ की सिद्धि की गयी है, ऐसा समझा जाता है।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - संसार के उद्धारक महेश्वर ने, जहाँ देवताओं की पूजा होती है, ऐसे यज्ञ का संहार किया। प्रकृति के वर्द्धन काल में शिव शान्ति से स्थित रहते हैं जबकि सृष्टि के उत्पत्तिकाल में प्रकृति सब कुछ व्याप्त करती है और थोड़ी मुस्कुराती हुई प्रकाशिता होती है। देहसंज्ञक पुरों में जो सोता है, वह पुरुष व्यक्तरूप से सबों में फैलता है, व्याप्त करता है।

वह विश्वात्मा प्रकृति के साथ विजयी होता है। गौरवर्ण की उज्ज्वला प्रकृति गौरी कही जाती है, जिसकी कोई उपमा नहीं है। वह सदैव दीनों का पालन करती है और विशिष्ट चिन्तन से सर्वत्र जाने वाली गतिशील होती है, लोकों को उत्पन्न करती है एवं लोगों को तारती है। वह गौरी ध्यान या चिन्तन से ही ग्रहण की जा सकती है। शिव के द्वारा दूतकर्म कराती है और श्रेष्ठ योगबल से शुभ शब्द का उच्चारण करती है, सबों को मोहित करने वाली होती है।

॥इति यज्ञाधिकारः॥

* * *

॥अथ कल्पाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ १० ॥

(पौराणिकः)

त्वमेव यज्ञो यज्ञांशस्त्वं यज्ञेशः परात्परः ।
शब्दब्रह्मपरं त्वं हि शब्दब्रह्मासि विश्वराट् ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - महानारायणेन प्रेरितो यदा विराट् महदाद्यहङ्कारैरुत्पादितस्तदा तस्य प्रकाराणि कतिधा परिकल्पितानि ? किं तस्य मुखं, के बाहू ऊरू पादौ ? यदा विराड्रूपं पुरुषं प्रजापतेः प्राणरूपा देवाः सङ्कल्पेनोत्पादितवन्तस्तस्मिन्काले कतिभिः प्रकारैस्तस्याङ्गानि विविधानि कल्पितवन्तः ?

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - वसुधा वाराही लोहितवर्त्तुला शब्दमयी श्रेष्ठं परब्रह्म ध्यायति। वरुणो यशसा कलत्रवान् मीनेशो वह्निवासी भवत्यनलो हविः सुगुह्यमार्गेण सुरपुरे प्रतिष्ठापयति। त्रिधातवो विकृत्या सृष्टिं व्याप्नुवन्ति तान्पवनः शोषकः पुनाति। वैकुण्ठे विष्णुः स्थित्वेन्द्रियाणि खर्वति वेदज्ञानेन वह्निमण्डलं मनोहरं याति दक्षपादेनेयते। हरिर्जिज्ञासाबुद्ध्या पक्षयुक्तो रुद्रस्याह्वानं करोति तं जानाति स्वमाययात्मानं मवते। विश्वतोमुखो मधुसूदनो विश्वं पाति तस्मै काम्यं ददाति। धृत्या बुधः प्रमां सूक्ष्मां गच्छति मरुदिव।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - महानारायण से प्रेरित होकर जब विराट् को महत्, अहङ्कार आदि से उत्पन्न किया गया तब उसके प्रकारों की संकल्पना कितने प्रकारों से की गयी ? कौन उसका मुख हुआ ? उसके हाथ, जङ्घा एवं पैर कौन हुए ? जब विराट् रूप वाले पुरुष को प्रजापति

के प्राणरूप देवताओं ने संकल्प से प्रकट किया, उस समय उसके विविध अंगों की कल्पना कितने प्रकारों से की गयी ?

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - वाराह की शक्ति पृथ्वी, जो लाल रंग एवं गोल आकार की है, वह शब्दमयी रूप में श्रेष्ठ परब्रह्म का ध्यान करती है। यश के द्वारा जलचरों के स्वामी वरुण अपनी शक्ति से युक्त होकर अग्नि में वास करने वाले होते हैं (*अग्नेराप:* श्रुति से) और अग्नि हविष्य को अत्यन्त गुप्त मार्ग से देवलोक में स्थापित करते हैं। तीनों धातु (कफादि या सत्त्वादि) अपनी विकृति से सृष्टि को व्याप्त करते हैं और उन धातुओं को सबों का शोषण करने वाला वायु पवित्र करता है। वैकुण्ठ में स्थित होकर विष्णु इन्द्रियों को मर्दित करते हैं और वेदज्ञान के द्वारा अपने दक्षिण चरण से मनोहर अग्निमण्डल को जाते हैं।

जिज्ञासाबुद्धि वाले वे हरि (आगम एवं निगमरूपी) पंख से युक्त होकर रुद्र का आह्वान करते हैं और उन्हें जानते हैं, अपनी माया से अपने को ही बांधते हैं। सम्पूर्ण विश्व की ओर मुख वाले मधुसूदन विश्व की रक्षा करते हैं और उसे काम्य वस्तुएं प्रदान करते हैं। धारणा शक्ति के द्वारा बुद्धिमान् जन सूक्ष्म यथार्थज्ञान के प्रति वायु के समान जाते हैं (ज्ञान को सम्पूर्णता के साथ वैसे ही जानते हैं जैसे वायु सबको सम्पूर्णता से व्याप्त करता है)।

॥इति कल्पाधिकारः॥

*_*_*

॥अथ ब्राह्मणाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरु तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳪ शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥

(पौराणिकः)

स्वराट् सम्राड्जगन्नाथ विराडसि जगत्पते।
अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्त्वं त्वया व्याप्तं जगन्मय॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - अस्य मुखं ब्राह्मण आसीद्राजानो बाहूकृताः। वैश्योऽस्योरू बभूव पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत। अत्राजायत इति शब्देन जन्मना वर्णः पुष्यते। चत्वारो वर्णाः *समजायन्त*। न तूद्भूयेच्छानुसारेण वर्णाञ्चिपयामासुरपितु सहजेन कर्तव्येन युक्ता रुरुहुः। मुखरूपा ब्राह्मणा बाहुरूपाः क्षत्रिया उरुरूपा वैश्याः पादरूपाः शूद्रा एवं चतुर्वर्णजातिमन्तो लोकपुरुषा निष्पन्नाः। *वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः* - वसुधाधिपा दानपरायणाः सोममण्डलं रविं वा गच्छन्ति। तेभ्यो ब्रह्मा जगद्बीजो यशसा, वैकुण्ठेन वा विष्णुः, कामरूपिणी लक्ष्मीरमृतत्वेनानुकम्पयति। तेषां शत्रून् बाधते भैरवः। दानेन जायते मङ्गलं निवृत्तिश्चामृतम्। सरस्वती वेदकण्ठा दीर्घघोणा पुण्यं ददाति। सोमः सुखेन प्राणानचलीकरोति। वरुणो विमलां मतिं योगबलञ्च ददाति। सावित्री शिवा यज्ञसूत्रेण चण्डं प्रचण्डं दुःखं हरति। कुमारः स्वस्तिकं प्रकाशयति। सत्ययुक्ताद्या शक्तिर्माता तारयति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - ब्राह्मण इसका मुख थे, राजाओं को भुजा बनाया गया। वैश्य इनकी जङ्घा हुए और पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए। यहाँ 'उत्पन्न' हुए, इस शब्द से जन्मना वर्ण की पुष्टि होती है। चारों वर्ण 'उत्पन्न' हुए, न कि उत्पन्न होकर इच्छानुसार वर्ण का चयन किया, अपितु साथ में उत्पन्न होने वाले कर्तव्य के साथ ही उत्पन्न हुए।

मुखरूप ब्राह्मण, भुजा-रूप क्षत्रिय, जङ्घारूप वैश्य एवं चरणरूप शूद्र, इस प्रकार चारों वर्ण-जाति वाले लोकपुरुष निष्पादित किये गये।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - दान में लगे रहने वाले पृथ्वी के राजा चन्द्रमा अथवा सूर्य के मण्डल को जाते हैं। उन्हें संसार की रचना करने वाले ब्रह्मा यश से (यश देकर), विष्णु वैकुण्ठ से (वैकुण्ठ देकर) अथवा इच्छानुसार रूप धारण करने वाली लक्ष्मी अमरता देकर कृपा करती है। भैरव उनके शत्रुओं को बाधित करते हैं। दान से मङ्गल, विरक्ति और मोक्ष सम्भव होता है। वेदों को कण्ठ में धारण करने वाली एवं लम्बी नासिका से युक्त सरस्वती पुण्य प्रदान करती है। चन्द्रमा सुखपूर्वक प्राणों को अचल करते हैं। वरुण निर्मल मति एवं योगबल प्रदान करते हैं। कल्याणमयी सावित्री यज्ञसूत्र के माध्यम से चण्ड एवं प्रचण्ड दुःख का हरण करती है। कुमार कार्तिकेय स्वस्तिक को प्रकाशित करते हैं। सत्य से युक्त आदिशक्ति माता उद्धार करती हैं।

॥इति ब्राह्मणाधिकारः॥

* * *

॥अथ सूर्याधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो
देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

(पौराणिकः)

प्राप्नुवन्ति परं स्थानं त्वां यजन्तश्च याज्ञिकाः ।
भोज्यं भोक्ता हविर्होता हवनं त्वं फलप्रदः ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यथा धेनवो ब्राह्मणादयो विराट्प्रजापतेरङ्गेभ्यो निस्सृतास्तथैव तस्य मनसश्चन्द्रमा नेत्राभ्यां सूर्यः कर्णाभ्यां वायुः प्राणश्च मुखादनलो जातः।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - आत्मशक्तिर्विश्वं पुनाति, श्रियं वसुधातले शिवभावनया जीवायाकर्षयति। जायते यस्या विश्वं सा विस्फुलिङ्गिनी देवी महातेजोवती ब्रह्माणं सूयते। ज्वालानङ्गवेदिनी दिगम्बराभावे जायते। पक्तिनामा श्याममुखी वियद्वक्रेण ब्रह्मशब्दस्याप्यायनमनुपालयति। धाता यावयते खलं वाणी प्राति निश्चयेन महामतिम्। लक्ष्मीर्मवत्यृद्धिं प्रतिष्ठां ददाति। द्विजाख्यः सविता पावकश्च सबिन्दवो जायन्ते। एवं योगस्तारकः।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - जैसे गाय, ब्राह्मण आदि विराट् प्रजापति के अंगों से निकले वैसे ही उसके मन से चन्द्रमा, नेत्रों से सूर्य, कानों से वायु एवं प्राण तथा मुख से अग्नि सम्भूत हुए।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - आत्मशक्ति विश्व को पवित्र करती है और ऐश्वर्य को पृथ्वी में जीव के कल्याण की भावना से आकर्षित करती है। जिससे विश्व उत्पन्न होता है, वह अग्निकणों के समान महान् तेजस्विनी देवी ब्रह्मा को जन्म देती है। मन की बात को जानने वाली, दिशाओं का ही वस्त्र धारण करने वाली वह ज्वाला सबों

के अभाव में भी उत्पन्न होती है। पक्ति (गौरव) नाम वाली, सांवले मुख की वह, आकाशरूपी मुख से ब्रह्मशब्द (प्रणव) को तृप्त करने के कर्तव्य का अनुपालन करती है। जो खल होते हैं, ब्रह्मा उनकी निन्दा करते हैं एवं महान् मति वाले को सरस्वती पूर्ण बनाती है। लक्ष्मी उसे ऋद्धियों से बांधकर प्रतिष्ठा देती है। द्विज कहलाने वाले (चन्द्रमा), सूर्य एवं अग्नि बिन्दु (क्रियाप्रधानता के लक्षण) के साथ उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार से उद्धार करने वाला योग है।

॥इति सूर्याधिकारः ॥

* * *

॥अथ लोकाधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँऽकल्पयन् ॥ १३ ॥

(पौराणिकः)

समस्तकर्मभोक्ता त्वं सर्वकर्मात्मकः प्रभो ।
सर्वकर्मोपकरणं सर्वकर्मफलप्रदः ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - अन्तरिक्षं नाभ्या आसीत्तस्य मस्तकाद्द्युलोकोऽभवत्। पद्भ्यां धरणी कर्णाभ्यां दिश एवं विधानेनाङ्गेन लोकाः कल्पिताः।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - सविता भूर्नक्षत्राणि यान्ति भ्रमन्ति प्रचण्डप्रभामूर्तयः। धरा क्षमासंज्ञिका गन्धतन्मात्रायुक्ता रक्तवर्णा कथ्यते। पावकः संवर्तकप्रद्युम्नः स्वप्नकाले प्रकृतिजठराद्विमुखो भूत्वा तीव्रेण स्वर्गं प्राणाद्याञ्च वह्निमण्डलेनोत्करोत्युष्मया वाराहीं तर्दति। लोकाक्षी ज्ञानेन निशाभवे प्राणसंज्ञकं पितामहञ्चेतयति। नभश्शान्त्या महान्तकं तोषयति। प्रकृतिर्नित्या शिवं महामतिं बलिनं कैलासे पालयति। जयन्ती ग्रन्थिग्राहा पाशेन शक्रादीनाकर्षयति। सृष्ट्यादौ क्षीरोदधिः शब्दात्मा भूत्वा ब्रह्माणं परमात्मनादं पद्मरेणुभिर्मिमीतेऽनादिम्।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - उसकी नाभि से अन्तरिक्ष हुआ तथा स्वर्ग उसका मस्तक बना। पैरों से पृथ्वी हुई, कानों से दिशाएँ, एवं इसी विधान से अलग अलग अंगों से विभिन्न लोकों की कल्पना की गयी।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - सूर्य, पृथ्वी एवं नक्षत्र गमन करते हैं, ये प्रचण्ड प्रभा वाले घूमते हैं। पृथ्वी को क्षमा संज्ञा वाली, गन्धतन्मात्रा से युक्त एवं लाल रंग वाली कहते हैं। ब्रह्मा के रात्रिकाल में प्रलयकालीन विशिष्ट बल वाला अग्नि प्रकृति के गर्भ

से दो मुखों वाला होकर तीव्रता के साथ स्वर्ग एवं प्राण की आदिभूता पृथ्वी को अग्निमण्डल के माध्यम से उत्क्रमित कर देता है और गर्मी से पृथ्वी को नष्ट करता है। सम्पूर्ण लोकों की ओर दृष्टि रखने वाली देवी ज्ञान से निशाकाल में प्राणसंज्ञा वाले पितामह ब्रह्मा को चेतना देती है। इस समय आकाश शान्ति के माध्यम से सबों का अन्त करने वाले अग्नि को सन्तुष्ट करता है।

नित्य स्वभाव वाली प्रकृति महान् मति एवं बल वाले शिव का कैलास में पालन करती है। विजय प्राप्त करने वाली वह, मायापाश को धारण करने वाली, पाश के माध्यम से इन्द्रादि का आकर्षण करती है। सृष्टि के प्रारम्भ में क्षीरसागर शब्दायमान् होकर ब्रह्मा को उनके कमलपराग के माध्यम से उस परमात्मनाद (प्रणव) को बोलकर बताता है, जो अनादि है।

॥इति लोकाधिकारः॥

* * *

॥अथ वसन्ताधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्ष्यनुष्टुप् छन्दः यज्ञो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥

(पौराणिकः)

कर्मप्रेरयिता त्वं हि धर्मकामार्थसिद्धिदः ।
त्वामृते मुक्तिदः कोऽन्यो हृषीकेश नमोऽस्तु ते ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यदा सिद्धा विराट्पुरुषस्यावयवान् हविं मत्वा यज्ञमाडुस्तदर्तवः सहायिका बभूवूः। वसन्तो घृतं ग्रीष्मः समिधा शरदृतुश्च हविर्बभूव।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - योगस्तारकः। वायुर्मही शब्दायेते श्रेष्ठाणामाधारशक्तेर्ज्ञानेन चैतन्यो विनियुज्यते। वृषो नारायणो नित्यं दीनान्दयते तान्वापयति च। होमेन बुधः पुरुषं विश्वरूपिणं शब्दात्मानमामन्त्रयति। निवासहेतवे हस्तिनापुरे मध्यकर्णकमाप्यायार्कमण्डलञ्जगद्बीजं याति। हंसः शान्तिं सद्यो विजयते। शवः प्राणसंज्ञाशून्यः स्मर्यते क्षरणे। गर्भविमोचनानन्तरं क्लेशितः क्लिन्नो धनार्थी प्रमत्तो दुःखसूचकं वृषघ्नदर्शनं करोति। कलत्रे रुचिमान् बालः कामिनीमिच्छति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - जब सिद्धों ने विराट् पुरुष के अवयवों को हवि मानकर यज्ञ का उद्यम किया तब ऋतु सहायक हुए। वसन्त घृत बना, ग्रीष्म समिधा एवं शरद ऋतु हविष्य बना।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - योग तारणहार है। वायु एवं पृथ्वी श्रेष्ठजनों का गुणगान करते हैं। आधारशक्ति के ज्ञान से चैतन्य नियोजित होता है। धर्मरूपी नारायण नित्य दीनजनों के उपर दया करते हैं और उन्हें सुख पहुँचाते हैं। हवन के माध्यम से ज्ञानी

व्यक्ति विश्वरूपी शब्दात्मा पुरुष को आमन्त्रित करता है। अपने निवास के लिए हस्तिनापुर (हाथियों के समान बली इन्द्रियों वाले इस पुर-संज्ञक शरीर) में मध्यकर्णक (बीच में स्थित हृदय) को व्याप्त करके फिर संसार की उत्पत्ति के स्थान सूर्यमण्डल को प्रस्थान करता है। हंससंज्ञा वाला वह जीव तुरन्त शान्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है। क्षरण में (जीव के निकल जाने पर) शव प्राणसंज्ञा से रहित के रूप में स्मरण किया जाता है। गर्भ से निकलने पर कष्ट पाता हुआ क्लिन्न जीव धन की आकांक्षा रखने वाला मतवाला बनकर दुःख की सूचना देने वाले, धर्म के संहारक पाप का दर्शन करता है। स्त्री में रुचि रखने वाला अज्ञानी कामिनी की इच्छा करता है।

॥इति वसन्ताधिकारः ॥

* * *

॥अथ पश्वधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप् छन्दः यज्ञो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

(पौराणिकः)

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - यदा पुरुषः पशुभावनया यज्ञे देवैर्बन्धितस्तदा गायत्र्यादीनि सप्तच्छन्दांसि सप्तपरिधिभावमावुः। पुनश्च गायत्र्यादीनि सप्तच्छन्दांस्यतिजगत्यादीनि सप्तच्छन्दांसि, कृत्यादीनि सप्तच्छन्दांसि मिलित्वैकविंशतिः समिधोऽभवन्।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - जीवो मोहवर्द्धनेन भ्रान्तिपाशैर्वेगितः शीघ्रं हृदयाद्बहिः प्राणैः सहोर्द्धवासं करोति। मनोमत्यादीनि सूक्ष्मधारणया सङ्कर्षितानि भवन्ति। ब्राह्मी शक्तिः प्रकृतिर्नित्या परमात्मनो गुह्यकर्तुर्विम्बं जीवं पुरुषवाचकं विद्यया शाश्वते सुखे रमयति। निवृत्तिध्वजोऽङ्गुष्ठमात्रो विद्यया पालितो भूत्वा वापयति। चेतनारूपः यशस्करो ब्रह्मा वृषध्वजो हरिः सविता शिखिवाहनो विनायको वैनतेयोऽनन्तः सुरेशश्च युगन्धराः सन्ति। सुरपुर ऊर्द्धवासिनो विश्वपावना आत्मकामघ्नाः प्रकाशिताः कल्याणवाचकाः प्रज्ञाप्रमाणीशा वीरतत्त्वा मृत्युदेवममरेशञ्जयन्ति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - जब पुरुष पशुभाव से यज्ञ में देवताओं के द्वारा बांधा गया तब गायत्री आदि सात छन्दों ने सात परिधियों के भावों में प्रवेश किया। फिर गायत्री आदि सात छन्द, अतिजगती आदि सात छन्द, कृति आदि सात छन्द मिलकर समिधा बने।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - जीव मोह की वृद्धि के कारण भ्रान्ति के पाशों से वेगित (आकर्षित) होकर शीघ्र ही प्राणों के साथ हृदय से बाहर निकलकर ऊर्ध्वभाग में वास करता है (भ्रान्ति ही मृत्यु का कारण है)। मन, बुद्धि आदि सूक्ष्म धारणा के द्वारा बलपूर्वक आकर्षित हो जाते हैं। ब्रह्म की नित्या शक्ति प्रकृति, गुप्त कार्य करने वाले परमात्मा के प्रतिबिम्ब पुरुषवाचक जीव को विद्या के द्वारा शाश्वत सुख में रमण कराती है।

निवृत्ति के लक्षण वाला अंगूठे के बराबर वह जीव विद्या के द्वारा पालित होकर सुखी होता है। चेतनारूपी, यश के कारण, ब्रह्मा, शिव, विष्णु, सूर्य, स्कन्द, गणेश, गरुड, शेषनाग और इन्द्र युगों को धारण करने वाले हैं। देवताओं के पुर में ऊपर निवास करने वाले, विश्व को पवित्र करने वाले, अपनी कामनाओं का नाश करने वाले, प्रकाशित और कल्याण का वाचन करने, प्रज्ञारूपिणी प्रमाण के स्वामी, वीरतत्त्व से युक्त जन अमरों के स्वामी मृत्युदेव को भी जीत लेते हैं।

॥इति पश्वधिकारः ॥

*_*_*

॥अथ धर्माधिकारः ॥

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः यज्ञो देवता स्तुतिकरणे विनियोगः ।

मन्त्रः

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा -
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

(पौराणिकः)
वयं च्युताधिकारास्त्वां प्रपन्नाः शरणं प्रभो ।
त्राहि नः पुण्डरीकाक्ष अगतीनां गतिर्भव ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

प्रचलितार्थः - सिद्धसङ्कल्पयुता देवा विराडवयवान् हवींषि मत्वा ज्ञानयज्ञेन यज्ञपुरुषमानर्हुः। अन्तरमिम उपस्करा यजनधर्मा अभवन्। यस्मिन् स्वर्गे महिमयुता देवा निवसन्ति तमेवानन्दरूपं पुरुषयाजकाः प्राप्नुवन्ति।

वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थः - हृदये पण्डिताः पापविकृतिं पाण्डित्यमेधया क्षम्पयन्ति। स्मृत्या स्तुतिं हरेर्भक्त्या श्रद्धया च ध्वनन्ति। प्रतिष्ठायाः प्रभा शुद्धकान्तिं निश्चिनुते। त्रिवर्णा प्रकृतिर्मातङ्गमालिनी भगमालिनी निर्गुणं रुद्रं प्रथयति। भोगदा लक्ष्मीर्वारुणी सुमुखेश्वरी क्षीरोदधेरमृतं दीर्घगन्धं प्रमर्दयति। गगने तरणिः प्रचण्डप्रकाशकः सोमं दीप्तसंज्ञकं करोति। प्राणशक्तिः सूक्ष्मा विश्वदानन्ता ज्वालिनी सर्गे हंसमेकरूपमागमसुगतं पुरुषोत्तमं विश्वव्यापकं सुवाहयति। महाविद्येश्वरी वेदकण्ठकला श्रेष्ठा भगवती दुर्गोत्तारिणी विजया पीतवासानङ्गवेदिनी क्रियाशक्तिनामा अनादिः श्याममुखी कामिनी सुचञ्चला सूक्ष्मभूता विशेषमानदा सर्गकारिणी भवति।

प्रचलित अर्थ इस प्रकार है - सिद्ध संकल्प से युक्त देवताओं ने विराट् पुरुष के अवयवों को ही हवि मानकर ज्ञानयज्ञ से यज्ञपुरुष की पूजा की। बाद में ये सभी उपस्कर ही यज्ञ के धर्म (नियमाचार) बने। जिस स्वर्ग में महिमा से युक्त देवगण रहते हैं, उसी आनन्दरूप धाम को इस पुरुष का पूजन करने वाले याजक प्राप्त करते हैं।

वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ इस प्रकार है - हृदय में पण्डितजन पापविकृति को पाण्डित्यमेधा के द्वारा सहन करते हैं। स्मृति के द्वारा भगवान् हरि के लिए भक्ति एवं श्रद्धा के साथ स्तुतिध्वनि करते हैं। प्रतिष्ठा की प्रभा शुद्ध कान्ति को निश्चित करती है। (लोहित, शुक्ल एवं कृष्ण) तीन वर्णों वाली, विशाल घटाओं एवं ऐश्वर्य की माला वाली प्रकृति निर्गुण रुद्र को गतिशील एवं ख्यापित करती है। भोग देने वाली वरुण(समुद्र) पुत्री लक्ष्मी, जो सुन्दर मुखमण्डल की स्वामिनी हैं, विस्तृत सुगन्ध वाले अमृत का मर्दन करती हैं।

आकाश में प्रचण्ड प्रकाश वाले सूर्य चन्द्रमा को 'दीप्त' संज्ञा वाला बनाते हैं (सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं)। विश्व को सब कुछ देने वाली, सूक्ष्म एवं अनन्त ज्वाला वाली प्राणशक्ति सृष्टि के प्रारम्भ में हंससंज्ञक, एकरूप, भली प्रकार से प्रकट होने वाले विश्व-व्यापक पुरुषोत्तम को वहन करती है। महाविद्या की स्वामिनी, वेदों को कण्ठ में धारण करने वाली, श्रेष्ठ ऐश्वर्य से युक्त, संकटों से रक्षा करने वाली, विजया, पीले वस्त्रों वाली, कामनाओं को जन्म देने वाली अथवा मन की बात जानने वाली, क्रियाशक्ति नाम वाली, अनादि, श्यामवर्ण के मुखमण्डल वाली, कामिनी, सुचञ्चला, सूक्ष्मस्थिति वाली, विशेष मान को प्रदान करने वाली (देवी प्रकृति ही) सृष्टि करने वाली होती है।

॥इति धर्माधिकारः॥

*_*_*

*_*_*

॥ इति शुक्लयजुर्वेदोक्तपुरुषसूक्ते श्रीनिग्रहाचार्येण श्रीभागवतानंदगुरुणा कृतं पुरुषोत्तमभाष्यं सम्पूर्णम् ॥

॥ इस प्रकार से शुक्लयजुर्वेद में कहे गये पुरुषसूक्त पर श्रीनिग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा निर्मित पुरुषोत्तमभाष्य सम्पूर्ण हुआ ॥

*_*_*

{ अथोत्तरनारायणः }

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्भुरिगार्षीत्रिष्टुप् छन्द
आदित्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः

अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च
विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति
तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

तस्योपासनाया अन्यानि प्रकाराण्यपि सन्ति - भूमिजलादिपञ्चभूतानां तत्त्वै रसैर्वा पुष्टो विश्वस्य कर्ता, विराट्पुरुषादपि प्राग्य आसीत्स महानारायणो रसरूपधारकः प्राथमिक आदित्यमूर्तिनोदेति। स एवादिनरस्य पुरुषमेधयाजिनो मुख्याराध्यो भवति।

उसकी उपासना के अन्य प्रकार भी हैं - भूमि, जल आदि पञ्चमहाभूतों के तत्त्व या रस से पुष्ट, विश्व का वह निर्माता जो विराट् पुरुष से भी पहले था, वह रसरूप को धारण करने वाला महानारायण सबसे पहले

आदित्यस्वरूप से उदित होता है। वही पुरुषमेध यज्ञ से यजन करने वाले प्रथम मनुष्य का मुख्य आराध्य होता है।

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त -
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

स आदित्यरूपी नारायणोऽविद्यारहितो ज्ञानरूपी परमपुरुषो मया ज्ञायते। तमादित्यवर्चसमन्धकारदुर्जयं ज्ञात्वा नरो मृत्युं विजित्यामृतत्वमुपैति। विहायैनं नास्त्यन्य उपायः।

वह आदित्यरूपी नारायण, जो अविद्या से रहित और ज्ञानरूपी है, वह परमपुरुष मेरे द्वारा जाना जाता है। उस सूर्यवत् प्रकाश वाले, अन्धकार के द्वारा अजेय को जानकर व्यक्ति मृत्यु को जीत कर अमृतत्व (मोक्ष) को प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं है।

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्भुरिगार्षीत्रिष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्र

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽन्तर -
जायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा -
स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

सर्वात्मा प्रजापतिर्लोकपतिर्वा अन्तर्यामी भूत्वा महद्गर्भमध्यतः प्रकटयति। मूलतो जन्मादिविकारादतीतोऽपि सन् स देवतिर्यङ्नरादियोनिषु प्रकाशीकृतो भवति। ब्रह्मज्ञानिनस्तं परमपुरुषं सर्वतः पश्यन्ति यस्मिन्सर्वे प्रतिष्ठिताः।

सबों के अन्दर स्थित, प्रजाओं अथवा लोकों का स्वामी वह अन्तर्यामी बनकर महद्गर्भ के मध्य से प्रकट होता है। मूलतः जन्म आदि विकारों से अतीत होने पर भी वह देवता, तिर्यक्, मनुष्य आदि योनियों में प्रकाशित होता है। ब्रह्म को जानने वाले ज्ञानी-जन उस परमपुरुष को व्यापकता से देखते हैं जिसमें सभी स्थित हैं।

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

य आदित्यसंकाशः प्रजापतिर्देवेभ्यो बलेन सम्पोषयति, तेषां चिरकालेन हितसाधनं करोति, पूर्वेषामपि पूर्वजो भूत्वा सर्वपूज्यो भवति, तं ज्योतिरूपिणं ब्रह्म वयं नुमः।

जो आदित्य के समान उज्ज्वल प्रजापति देवताओं को बल देकर पुष्ट करता है, उनक लम्बे समय से हितसाधन करता है, ब्रह्मादि पूर्वजों का भी पूर्वज बनकर सबों का पूज्य बनता है, उस ज्योतिरूप ब्रह्म को हम प्रणाम करते हैं।

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिरार्ष्यनुष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥ २१ ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

इन्द्रियाधिष्ठातृदेवैरुदीयमानमादित्यब्रह्म एवमुक्तम्, ये ब्राह्मणास्त्वामजरममररूपिणं जानन्ति सर्वे देवास्तेषां वशानुगाः।

उदित होता हुआ वह आदित्यरूपी ब्रह्म इन्द्रियों के स्वामी देवताओं के द्वारा इस प्रकार कहा गया कि जो ब्राह्मण आपको अजर एवं अमर स्वरूप वाला जानते हैं, सभी देवता उनके वश में रहते हैं।

विनियोगः - ॐ अस्य मन्त्रस्य नारायण ऋषिर्निचृदार्षीत्रिष्टुप् छन्दः पुरुषो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

मन्त्रः

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणामुम्मऽइषाण सर्वलोकम्मऽइषाण ॥ २२ ॥

पुरुषोत्तमभाष्यम्

महानारायणादित्य ! श्रीश्च लक्ष्मीश्च तव द्वे पत्न्यौ, ब्रह्मणोऽहोरात्रे कल्पे वा तव पार्श्वे, खे नक्षत्राणि तव ज्योतिर्मयानि रूपाणि सन्ति। त्वं मे शिवं कामय मेऽमृतत्वं सर्वैश्वर्यं देहि।

हे आदित्यरूपी महानारायण ! श्री एवं लक्ष्मी, आपकी दो पत्नियाँ हैं। ब्रह्मा के दिन-रात अर्थात् कल्पद्वय आपकी भुजाएं हैं। आकाश में स्थित नक्षत्र आपके प्रकाशित स्वरूप हैं। आप मुझे कल्याण प्रदान करें, मोक्ष प्रदान करें, सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करें।

भाष्यस्यास्य लेखनकाले मौद्गलायनेन भोजकेन ब्रजेशदैवज्ञाचार्येणावलोकितस्वप्नानुसारं पुराणपुरुषोत्तमाज्ञया वर्णोद्धारतन्त्राभिधानार्थसाधुतासिद्धिहेतवे ब्रह्मबोधार्थं वा मया निग्रहेण धुरन्धराख्या संहिता सहस्राधिकश्लोकपरिमाणा विरचिता शुभानि सन्तु लोकेभ्यः।

इस भाष्य के लेखनकाल में मुद्गलगोत्र में उत्पन्न शाकद्वीपीय ब्राह्मण ब्रजेश-दैवज्ञाचार्य (ब्रजेश पाठक – ज्यौतिषाचार्य) के द्वारा देखे गए स्वप्न के अनुसार पुराणपुरुषोत्तम की आज्ञा से वर्णोद्धार के अनुसार तन्त्राभिधान अर्थ की साधुतासिद्धि के लिए अथवा ब्रह्मबोध के लिए मुझ निग्रहाचार्य के द्वारा एक हज़ार से अधिक श्लोकों वाली धुरन्धर नाम की संहिता रची गयी है, सभी लोगों का कल्याण हो।

*_*_*

श्रीभागवतानंद गुरु

(पौराणिक उत्तरनारायणः)

संसारपतितस्यैको जन्तोस्त्वं शरणं प्रभो।
त्वत्सृष्टौ त्वादृशो नास्ति यो दीनपरिपालकः॥
दीनानाथैकशरणं पिता त्वं जगतः प्रभो।
पाता पोष्टा त्वमेवेश सर्वापद्विनिवारकः॥
त्राहि विष्णो जगन्नाथ त्राहि नः परमेश्वर।
त्वामृते कमलाकान्त कः शक्तः परिरक्षणे॥
अन्तर्यामिन्नमस्तेऽस्तु सर्वतेजोनिधे नमः॥

हे प्रभो ! संसार में गिरे हुए जन्तु के आप एकमात्र आश्रय हैं। आपकी इस सृष्टि में आपके समान कोई अन्य नहीं है जो दीनों का पालनकर्ता हो। हे दीन एवं अनाथों के एकमात्र शरण ! हे प्रभो ! आप इस संसार के पिता, रक्षक एवं पोषक हैं, आप ही सबों के स्वामी एवं सभी प्रकार की आपत्तियों के निवारक हैं। हे विष्णो ! हे संसार के स्वामी ! रक्षा करें। हे परमेश्वर ! हमारी रक्षा करें। हे लक्ष्मी के पति ! आपके बिना कौन रक्षा करने में समर्थ है ? हे सबों के अन्दर की बात जानने वाले ! आपके लिए प्रणाम है। हे सभी प्रकार की तेजस्विता के भण्डार ! आपको नमस्कार है।

(पौराणिक पुरुषसूक्त स्कन्दपुराण के वैष्णवखण्ड - पुरुषोत्तमजगन्नाथमाहात्म्य से उद्धृत किया गया है)

*_*_*

*_*_*

॥ इति शुक्लयजुर्वेदोक्तोत्तरनारायणे श्रीनिग्रहाचार्येण श्रीभागवतानंदगुरुणा कृतं पुरुषोत्तमभाष्यं सम्पूर्णम् ॥

॥ इस प्रकार से शुक्लयजुर्वेद में कहे गये उत्तरनारायण पर श्रीनिग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु के द्वारा निर्मित पुरुषोत्तमभाष्य सम्पूर्ण हुआ ॥

*_*_*

श्रीभागवतानंद गुरु